

# संगति

## भाग - ८

### ‘राग’ - ‘नाद’ द्वारा संगति

‘राग’ - ‘नाद’ - ‘धुनि’ — ईश्वरीय कवाओ, शब्द, नाम, बाणी की अति सूक्ष्म थरथराहट या ‘लरज़राहट’ (subtle vibrations) हैं, जिसे गुरबाणी में —

‘अनहद धुनि’

‘अनहद नाद’

‘अनहद सबद’

‘अनहद झन्कार’

‘रूणझुण’

‘सहज धुन’

आदि शब्दों से दर्शाया गया है।

यह आत्मिक ‘थरथराहट’ — ईश्वरीय मंडल की अबोल बोली है। इस ‘लरज़राहट’ ‘अनहद राग’ अथवा ‘अनहद धुन’ द्वारा ही आत्मिक मंडल में ईश्वरीय ‘हुकुम’ अथवा शब्द का प्रकटाव तथा ‘नाम’ का प्रकाश होता है।

हमारी अन्तर - आत्मा में ईश्वरीय ज्योति का प्रवेश है जिस कारण ईश्वरीय ‘राग’ की ‘देन’ भी हमें ‘विरासत’ में मिली है। इसी कारण सभी जीव अपनी - अपनी मानसिक अवस्था अनुसार किसी न किसी स्तर पर ‘राग’ से आकर्षित होते हैं, रस पान करते हैं तथा ‘संगति’ करते हैं।

जानवर भी ‘राग’ का प्रभाव लेते तथा अनुभव करते हैं, जिस प्रकार —

श्री कृष्ण जी महाराज जब जंगल में बाँसुरी बजाते थे, तब जंगल के सभी जानवर ‘राग’ की धुनि से आकर्षित हुए एकत्रित हो जाते थे।

सर्प जैसा जहरीला जानवर भी ‘बीन’ के ‘राग’ के प्रभाव अधीन ‘झूमने’ लगता है।

हिरन 'शिकारी के घंटे' की 'धुनि' सुनकर होश-हवास खोकर **आकर्षित हो जाता है।**

इसलिए 'राग' जैसी दैवीय देन का जीव पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि उसे अपना आस्तित्व भूल जाता है तथा 'राग' की सूक्ष्म तरंगों की लहरों पर उड़ान भरने लगता है और ईश्वरीय 'छुह' प्राप्त करता है।

'राग' ईश्वरीय मंडल की 'वस्तु' है, इसलिए इस में दामनिक शक्ति भी काम करती है, जिसके प्रभाव अधीन जीव —

अपना आस्तित्व भूल जाते हैं,  
विस्मित हो जाते हैं,  
आत्मिक मंडल में उड़ान भरते हैं,  
आत्मिक 'छुह' प्राप्त करते हैं,  
रहस्यमयी भावना में तैरते हैं,  
बिन बादल वर्षा हो सकती है,  
'ईधन' बिन आग लग सकती है,  
लोहा व पत्थर पिघल सकते हैं,

आदि, अनेक चमत्कार होते हैं।

इसी लिए गुरू साहिबान ने गुरबाणी को 'रागों' में आलापा है तथा हमें भी 'रागों' में कीर्तन करने का ताकीदी हुकुम है।

इस 'राग' अथवा 'धुन' के दो स्वरूप हैं —

१. अनहद 'राग' अथवा अनहद धुन:— यह आत्मिक मंडल में 'अनहद शब्द' द्वारा सदैव बजती रहती है।

घटि घटि वाजै किंगुरी अनदिनु सबदि सुभाइ॥ (पृ ६२)

अनहद सबदु वजै दिनु राती ॥

अविगत की गति गुरमुखि जाती ॥ (पृ ९०४)

तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी सहजे सहजि समाई हे। (पृ १०६९)

अनहद रुण झुणकारु सदा धुनि निरभउ कै घरि वाइदा ॥ (पृ १०३३)

यह आत्मिक अबोल-बोली हमारे शारीरिक कानों से नहीं सुनी जा सकती — क्योंकि यह अति सूक्ष्म आत्मिक मंडल की 'वस्तु' है, जो केवल

**‘अनुभव’ द्वारा ही सुनी तथा अनुभव की जा सकती है।**

जब हमारा दैवीय मन इस ‘अनहद राग’ या ‘धुनि’ को अनुभव करता है, तब उस अनहद राग या धुनि से ‘संगति’ करता है, रस अनुभव करता है तथा विस्मादित होता है।

आन्तरिक ‘अनहद राग’ तो स्वयं सहज स्वभाव निरन्तर ईश्वरीय हुकुम में बजता रहता है तथा इस के लिए कोई ‘यन्त्र’ या ‘गायक’ की आवश्यकता नहीं ।

अणमडिआ मंदलु बाजै॥

बिनु सावण घनहरु गाजै॥ (पृ ६५७)

विणु वजाई किंगुरी वाजै जोगी सा किंगुरी वजाइ॥ (पृ ९०९)

२ दूसरी ओर इस त्रिगुण मंडल में हमारे स्थूल कानों को केवल बाहरी राग की ‘टूँ-टाँ’ ही सुनती है, तथा इसी में ही हमारा मन मस्त हो जाता है।

यह ‘राग’ का बाहरी स्वरूप, आन्तरिक ‘अनहद राग’ का अक्स या प्रतिबिम्ब ही है। जिस की विभिन्न तरंगों को प्रथक करके रागों के कई नाम रखे गये हैं, जैसे श्री राग, सोरठ राग, आसा राग, रामकली राग आदि।

बाहरी ‘राग’ कई अच्छी-बुरी भावनाओं से गाये जाते हैं, जैसे कि —

हरि के गुण गायन के लिए,

मन बहलाव के लिए,

तुच्छ रुचियों की उक्साहट के लिए,

फिल्मी गानों के लिए,

माया कमाने के लिए,

लोगों को रिझाने के लिए,

‘वाह-वाह’ कहलवाने के लिए, आदि।

जब हम इन ‘रागों’ द्वारा हरि के गुण गाते हैं, तब ‘राग’ सत्संग करने का सुन्दर साधन बन जाता है। इस प्रकार ‘राग’ द्वारा हरि के गुण गाने, परमार्थ का सब से सरल, कारगर, रसदायक, प्रेममयी ‘साधन’ हो जाता है।

गउड़ी रागि सुत्तरवणी जेरवसमै चिति करेइ॥ (पृ ३११)

सोरठि तामि सुहावणी जा हरि नामु ढंढोले॥ (पृ ६४२)

धनु सु राग सुगंडे आलापत सभ तिरव जाइ॥

धनु सु जंत सुहावड़े जो गुरमुखि जपदे नाउ॥ (पृ ९५८)

दूसरी ओर यदि हम 'राग' को किसी स्वार्थ या तुच्छ रुचियों की उक्साहट के लिए प्रयोग करते हैं, तब इस ईश्वरीय देन का दुरुपयोग करते हैं। इस प्रकार 'राग' को तुच्छ भावनाओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करना 'कुसंगति' करनी है — जो हमारे आत्मिक मार्ग में हनिकारक तथा बाधक है।

गीत राग घन ताल सि कूरे॥

त्रिहु गुण उपजै बिनसै दूरे॥ (पृ ८३२)

दूजै भाइ बिलावलु न होवई मनमुखि थाइ न पाइ॥ (पृ ८४९)

रागि नादि मनु दूजै भाइ॥

अंतरि कपटु महा दुखु पाइ॥ (पृ १३४२)

**नोट: -** गुरबाणी विचार की श्रंखला के लेख न. ६ में 'राग' - 'नाद' - 'धुनी' के विषय में विस्तार पूर्वक व्याख्या की गयी है।

जिस प्रकार पानी का बुलबुला 'हवा' द्वारा पानी में से उत्पन्न होता है तथा पानी का ही रूप होता है। उसी प्रकार ईश्वरीय ज्योति पर 'अहम्' का गिलाफ चढ़ जाये, तब 'मन' कहलाता है। ईश्वरीय 'ज्योति' मैलहीन 'निर्मल' है — परन्तु इस में से उत्पन्न 'मन' पर अहम् का 'आवरण' या गिलाफ चढ़ जाये, तब यह 'मन' मैला हो जाता है।

ज्यों - ज्यों अहममयी मन मायिकी मंडल में विचरण करता है — त्यों - त्यों इस पर मायिकी 'मैल' चढ़ती जाती है।

सफेद कमरे में से 'धुँआ' गुजर जाये तो कमरे की निर्मलता को धुँआ 'छुह' जाता है। यदि नित्यप्रति धुँआ उस कमरे में से गुजरता रहे, तब कमरा 'मैला' हो जाता है। इसीलिए 'रसोई' हमेशा मैली रहती है।

हमारा 'मन' अति 'चंचल' तथा अस्थिर है — जिस में प्रति - क्षण, पल - पल अनेक ख्याल - मनोभाव - भावनाएँ आदि उत्पन्न होते हैं तथा अपनी 'रंगत' या 'मैल' की 'छुह' मन पर लगा जाते हैं।

हमारा अहममयी मन माया में विचरण करता है — इसलिए हमारे ख्याल - मनोभाव भावनाएँ प्रायः मैली होती हैं। इन मैले तुच्छ ख्यालों तथा मनोभावों के

निरन्तर अभ्यास से हमारे मन की रुचियाँ – भावनाएँ – आदतें – आचरण भी मैला हो जाता है — जो धीरे – धीरे हमारे अन्तःकरण में उतर जाती हैं तथा हम मोह – माया के चक्रव्यूह में ही कर्म करते तथा परिणाम भोगते हैं।

पलचि पलचि सगली मुई झूठे धंधे मोहु।। (पृ १३३)

हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ।। (पृ ५६०)

भूलिओ मनु माइआ उरझाइओ।।

जो जो करम कीओ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइओ।।

(पृ ७०२)

इहु मनु धंधे बांधा करम कमाइ ॥

माइआ मूठा सदा बिललाइ ॥ (पृ ११७६)

उपरोक्त विचार से स्पष्ट है कि —

अहम् की भावना से,

मायिकी मंडल में विचरण करने से,

तुच्छ विचारों की 'छुह' से,

तुच्छ रुचियों की 'संगति' से,

मैले मनोभाव की 'रंगत' से,

असुरी मायिकी कर्मों से

**हमारा मन नित्य – प्रति मैला होता जा रहा है।**

इस प्रकार हम कई जन्मों से अपने मन को मैला करते आये हैं तथा अब भी मैला करते जा रहे हैं।

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ।। (पृ ३९)

हउमै माइआ मैलु है माइआ मैलु भरीजै राम।। (पृ ५७०)

जन्म जन्म की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु।। (पृ ६५१)

जेता मोहु परीति सुआद ॥

सभा कालख दागा दाग ॥

दाग देस मुहि चलिआ लाइ।। (पृ ६६२)

हउमै मैला जगु फिरै मरि जमै वारो वार।। (पृ ७५६)

अंतरि लोभु मनि मैले मलु लाए॥

मैले करम करे दुखु पाए॥

(पृ १०६२)

हमारे मन की यह 'मलिन' दशा — अहम् के 'भ्रम-भुलाव' में से तुच्छ विचारों, तुच्छ मनोभाव, मलिन भावनाओं, मलिन रुचियों, मायिकी निश्चय, मायिकी कर्म-काण्ड की 'छुह', मेल, संग, संगति, अभ्यास द्वारा ही हो रही है।

मनमुख मैले मलु भरे हउमै तिसना विकारु ॥

(पृ २९)

मनु मैला है दूजै भाइ ॥

मैला चउका मैले थाइ ॥

मैला खाइ फिरि मैलु वधाए मनमुख मैलु दुखु पावणिआ॥ (पृ०-१२१)

शराबी — 'शराब' का सेवन अथवा 'संगति' करते-करते स्वयं ही 'शराब का स्वरूप' बन जाता है, जिस का बुरा तथा हानिकारक प्रभाव उस के अपने सम्पूर्ण जीवन पर, परिवार पर, सम्बन्धियों तथा साथियों पर, समाज (society) पर, परमार्थ पर, विश्व पर तथा अगले जन्मों पर, पड़ना अनिवार्य है।

इसी प्रकार हमारे मायिकी तुच्छ मलिन ख्यालों, मनोभावों, निश्चयों तथा कर्मों का प्रभाव, केवल हमारे अपने पूरे जीवन पर ही नहीं पड़ता, बल्कि हमारे वातावरण तथा सम्पूर्ण संसार पर भी पड़ता है और हमारे अगले जन्मों को भी नरकमयी बना देता है।

प्रत्येक 'जीव' अलग-अलग चलते-फिरते, जीते-जागते कम्प्यूटर (computer) हैं। इन मानसिक कम्प्यूटरों में जो-जो आँकड़े (data) अथवा अच्छे-बुरे ख्याल, मनोभाव, भावनाएँ तथा कर्म आदि डाले जाते हैं, उन के 'अक्स' या 'रंगत' का सामूहिक परिणाम तत्क्षण हमारे मन पर पड़ता रहता है तथा हमारे जीवन को 'अच्छा या बुरा' अथवा सुखदायी या दुःखदायी बनाता है।

दूसरे शब्दों में हमारा अच्छा या बुरा 'जीवन' हमारे अच्छे या बुरे ख्यालों-मनोभाव-कर्मों की 'छुह', अक्स, 'मेल' अथवा 'संगति' पर ही निर्भर है।

कबीर मनु पंखी भइओ उडि उडि दह दिस जाइ॥

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ॥

(पृ १३६९)

तनक ही जामन कै दूध दधि होत जैसे

तनक ही कांजी परै दूध फटि जात है।

तनक ही बीज बोइ बिररव बिथार होइ  
तनक चिनग पर भसम ह्वै समात है।  
तनक ही रवाइ बिरव होत है बिनाशकाल  
तनक ही अंभित कै अमर ह्वै गात है।

**संगति असाध साध गनिका विवाहता जयों**

**तनक मै उपकार औ विकार घात है॥** (क०भा०गु०-१७४)

हम सभी जीव रव्यालों तथा मनोभावों के जीवन्त, चलते फिरते 'रेडियो स्टेशन' (radio transmitting station) हैं। इस प्रकार हम भी **एक ही सतह** (wave-length) पर तरंगों (vibrations) **के माध्यम से, एक दूसरे पर —**

'अक्स' डालते हैं  
'छुह' लगती है,  
'मेल' करते हैं,  
'संग' करते हैं,  
'रंगत' लेते-देते हैं।

जिसके परिणामस्वरूप हमारा **सम्पूर्ण जीवन 'ढलता' है** तथा हमारी विलक्षण व पृथक शरत्सीयत और प्रारब्ध बनता है।

**बिनु राति कमाइअड़ो सो आइओ माथै॥** (पृ ४६१)

**मसतकि लिखिअड़ा लेखु पुरबि कमाइआ जीउ ॥**

लेखु न मिटई पुरबि कमाइआ किआ जाणा किआ होसी॥ (पृ ६८९)

**लेखा लिखीऐ मन कै भाइ॥** (पृ १२३७)

उपरोक्त विचार को सक्षिप्त रूप से यँ दर्शाया जा सकता है —

अहम् की ढिठाई,  
माया के जाल,  
भ्रम-भ्रुवाव,  
पाँच वाशनाएं,  
**संगति या कुसंगति,**  
वातावरण,

मानसिक 'तरंगों' (vibrations)

माया के आकर्षण (gravity)

के प्रभाव अधीन जीव, पलच – पलच कर नरकमय जीवन भोगते हैं, जिस का प्रत्यक्ष नक्शा, इस समय दुनिया में हर दिशा में प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है।

'ईश्वर' से 'टूट' कर अथवा विमुख हो कर जीव मानसिक रूप में अज्ञानी व निर्बल हो जाता है। जीव की इस विवशता की दशा को गुरबाणी में यून दर्शाया गया है —

अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बार मना ॥

मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगे करी पुकार जना ॥ (पृ १५५)

पंच बिखादी एकु गरीबा राखहु राखनहारे ॥

खेदु करहि अरु बहुतु संतावहि आइओ सरनि तुहारे ॥२॥

करि करि हरिओ अनिक बहु भाती छोडहि कतहूं नाही ॥ (पृ २०५ – ६)

एकु कोटु पंच सिकदारा पंचे मागहि हाला ॥

जिमी नाही मै किसी की बोई ऐसा देनु दुखाला ॥ (पृ ७९३)

ऐसी 'निर्बलता' तथा 'विवशता' में दुखी हो कर 'जीव' 'धर्म' का आश्रय लेता है।

मलिन मन 'धर्म' को भी अपने मायिकी 'झरोखे' से देखता है तथा अपनी मायिकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही प्रयोग करता है।

इस विवशता में मनुष्य दिखावटी साधू – संतों अथवा तथाकथित 'संगति' की ओर मुँह मोड़ता है। ये बनावटी धार्मिक मार्गदर्शक स्वयं भी फोकट कर्म – काण्डों व रूखे – सूखे धार्मिक साधनों में फँसे होते हैं तथा जरूरत मंद जिज्ञासुओं को भी इन फोकट पाठ – पूजा, कर्म – काण्ड, साधनों आदि में फँसा देते हैं, जिससे जिज्ञासु और भी भ्रांतियों में फँस कर भटकते फिरते हैं। कई बार इन मायावादी जिज्ञासुओं का दिल टूट जाता है अथवा निराश हो कर वे ईश्वर से भी विमुख हो जाते हैं।

किरिआचार करहि खटु करमा इतु राते संसारी ॥

अंतरि मैलु न उत्तरै हउमै बिनु गुर बाजी हारी ॥ (पृ ४९५)



पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे॥  
 पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे॥  
 पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका॥  
 हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका ॥ रहाउ॥ (पृ. ६४१)

जेते रे तीरथ नाए अहंबुधि मैलु लाए  
 घर को ठाकुरु इकु तिलु न मानै ॥.....  
 मनहठि जो कमावै तिलु न लेखै पावै  
 बगुल जिउ धिआनु लावै माइआ रे धारी ॥ (पृ. ६८७)

कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग  
 सी भगवान को भेदु न पाइओ ॥ (सवये या०१०)

ऐसे जिज्ञासु सुन - सुनाकर जब संगति भी करते हैं, तब ईश्वर से टूटे हुए अहम्भय अज्ञानी साधकों की संगति में उनके मन की ज्वाला नहीं बुझती तथा शान्ति नहीं मिलती परन्तु फिर भी 'डूबते को तिनके का सहारा' अनुसार ये 'दिखावटी संगति' तथा फोकट कर्म - काण्डों में ही अपने दुखी मन को 'संगति' करने के बड़प्पन की झूठी तसल्ली देकर, इस में ही मस्त रहते हैं।

यही कारण है कि सारी उम्र पाठ - पूजा, कर्म - धर्म तथा 'दिखावटी संगति' करते हुए भी, उनके मायिकी जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता तथा उसी प्रकार माया में गलतान होकर जलते - सड़ते - कुढ़ते हुए नारकीय जीवन भोगते हैं।

यही कारण है कि साधारण जिज्ञासुओं की शिकायतें होती हैं कि —

पाठ करते समय मन नहीं टिकता,  
 सिमरन करते हुए मन एकाग्र नहीं होता,  
 गुस्सा बहुत आता है,  
 लोभ - लालच में फंसे हैं,  
 काम - क्रोध की वाशना तंग करती है,  
 शिकवे - शिकायत बहुत पैदा होते हैं,  
 वैर - विरोध में जलते - भुनते हैं,  
 मन को शान्ति नहीं मिलती,

संगति में नाममात्र रस आता है,  
बाद में वही हाल

**आदि।**

इस का कारण यह है कि हमारा मन कई जन्मों से हर ओर अन्दर-बाहर माया में विचरण करके, गलतान हो कर, लथ-पथ हो कर, धँस कर, बस कर, रस रूप होकर, समा कर 'माया' का ही 'स्वरूप' बन गया है तथा परमार्थ या दैवीय गुणों से अन्जान, बेपरवाह, लापरवाह, विमुख व कठोर हो चुका है।

मनुष्य की यह स्वयं रचित मानसिक अधोगति बहुत तरस योग्य है — क्योंकि उसकी मायिकी वृत्ति को कोई उच्च आत्मिक टेक-सहारा- 'जीवन-दिशा' नहीं मिलती तथा न ही कमजोर मन में कोई उत्तम, श्रेष्ठ, सुहाना आत्मिक प्रेम भरा साहस-चाव-उद्यम ही उत्पन्न होता है।

मनुष्य की ऐसी दयनीय विवशता को गुरु साहिबान की कोमल आत्मा ने महसूस किया तथा दया में आकर अपने आत्मिक कर्तव्य का पालन करते हुए, परमात्मा के चरणों में गुरबाणी द्वारा यँ प्रार्थना की है —

सुनहु बिनंती ठाकुर मेरे जीअ जंत तेरे धारे॥

राखु पैज नाम अपने की करन करावनहारे॥

प्रभ जीउ खसमाना करि पिआरे ॥

बुरे भले हम थारे॥

(पृ ६३१)

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि ॥

जितु दुआरे उबरै तितै लैहु उबारि ॥

(पृ ८५३)

सभे जीअ समालि अपणी मिहर कर ॥

(पृ १२५१)

मनुष्य माया वादी मन से यदि कोई अच्छा कर्म करता भी है, तब वह भी 'अहम्' के आधार पर करता है। इसलिए अहम् वादी मनुष्य के समस्त कर्म-धर्म, पाठ-पूजा आदि रूखे-सूखे फोकट, निष्फल होते हैं, जो व्यर्थ जाते हैं तथा मनुष्य की मानसिक अवस्था, 'वंही की वंही' रहती है — अपितु प्रतिदिन 'बिगड़ती' जाती है।

कोटि करम करै हउ धारे ॥

समु पावै सगले बिरथारे ॥

(पृ २७८)

सिधा के आसण जे सिखै इंद्री वसि करि कमाइ ॥  
मन की मैलु न उतरै हउमै मैलु न जाइ ॥ (पृ ५५८)

पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता ॥  
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ॥  
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ ॥  
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ ॥  
(पृ ६४२)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ॥  
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ॥ (पृ १४२८)

उपरोक्त विचारों का निष्कर्ष यह है कि अहम् वादी मनुष्य माया में विचरण करता हुआ मायिकी आकर्षण (gravity) द्वारा नीचे रसातल की ओर अन्जाने ही खुद-ब-खुद बहता जा रहा है।

यदि कोई 'दलदल' में फँस जाये, तो वह अन्जाने ही नीचे की ओर गिरता या फिसलता जाता है। यदि वह हाथ-पैर मार कर निकलने का प्रयास भी करे, तब भी वह और अधिक धँसता जाता है।

इसी प्रकार मनुष्य मायिकी 'दलदल' अथवा मायिकी विकट शोक सागर में फँस कर स्वयं निकल नहीं सकता क्योंकि वह माया की आकर्षण शक्ति से बहुत कमजोर होता है। यदि कोई उद्यम भी करता है, तब वह उद्यम भी निष्फल जाते है।

पाइ ठगउली सभु जगु जोहिआ ॥  
ब्रहमा बिसनु महादेउ मोहिआ ॥.....  
वरत नेम करि थाके पुनहचरना ॥  
तट तीरथ भवे सभ धरना ॥.....  
माइआ मोहि सभो जगु बाधा ॥  
हउमै पचै मनमुख मूराखा ॥ (पृ ३९४)

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ॥  
किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ॥  
(पृ ८५७)

बलवन्ति बिआपि रही सभ मही॥ (पृ ४९९)

मोहनी मोहत रहै न होरी॥

साधिक सिध सगल की पिआरी तुटै न काहू तोरी॥ (पृ १२१६)

गुरबाणी अनुसार इस मायिकी भ्रम-गढ़ में से निकलने का एक मात्र साधन यूँ दर्शाया गया है —

साध संगि भै भरम मिटाइआ ॥ (पृ १९३)

संतसंगि हरि मनि वसै ॥

दुखु दरदु अनेरा भ्रमु नसै ॥ (पृ २११)

अंचलु गहि कै साध का तरणा इहु संसार॥ (पृ २१८)

साधसंगि मिटे भरम अंधारे॥

नानक मेली सिरजणहारे॥ (पृ ३८९)

साध जना कै संगि भवजलु तारिअनु॥ (पृ ५१७)

एहु जगु जलता देखि कै भजि पए हरि सरणाई राम॥ (पृ ५७१)

गिआनु धिआनु किछु करमु न जाना नाहिन निरमल करणी ॥

साधसंगति कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी ॥ (पृ. ७०२)

साधसंगि मिटे भै भरमा अंभितु हरि हरि रसन भने॥ (पृ. ११४९)

पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण पानी ढलान की ओर बहता है। यदि पानी को ऊपर चढ़ाना हो, तब पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से अधिक ताकतवर शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, जैसे कि मोटर पम्प आदि।

इसी प्रकार मायिकी आकर्षण (gravity) से मन की वृत्तियाँ तुच्छ वाशनाओं की ओर सहज ही आकर्षित हो रहीं हैं। इन वृत्तियों को ऊपर की ओर अथवा आत्मिक मंडल की ओर मोड़ने के लिए किसी अन्य 'दामनिक' दैवीय शक्ति की आवश्यकता है।

यह दामनिक दैवीय शक्ति आत्मिक शक्ति वाले बख्खो हुए गुरमुख प्यारों का 'मेल' या 'संगति' ही है।

गुरबाणी अनुसार ऐसी दैवीय आत्मिक शक्ति वाली जीवन्त 'साध संगति' के बिना मनुष्य का मायिकी दलदल अथवा 'विकट सागर' में निकलना

**असम्भव या कठिन है।**

साध संगति सिउ संगु न कीआ बहु जोनी दुखु पावै॥ (पृ ७७)

**करि करि हरिओ अनिक बहु भाती छोडहि कतहूं नाही॥**

एक बात सुनि ताकी ओटा साधसंगि भिटि जाही॥ (पृ. २०६)

खोजत खोजत सुनी इह सोइ ॥

साध संगति बिनु तरिओ न कोइ ॥ (पृ ३७३)

डोलि डोलि महा दुखु पाइआ बिना साधू संग॥ (पृ ४०५)

बिनु सतसंग सुखु किनै न पाइआ जाइ पूछहु बेद बीचार॥ (पृ १२००)

दूसरी ओर, बरखी हुए गुरमुख प्यारों की 'साध संगति' में विचरण करते हुए, 'जीव' की वृत्ति का, सहज ही माया के भ्रममय 'जादू' से छुटकारा होता जाता है तथा वह दैवीय मंडल की ओर आकर्षित होने लगती है।

गुरबाणी में इस नुक्ते को यँ दृढ़ किया गया है —

साधू संगति मनि वसै पूरन होवै घाल ॥ (पृ ५२)

साधू संगि तरीजै सागर कटीऐ जम की फासा जीउ॥ (पृ १०८)

जा कउ रे किरपा करै जीवत सोई मरे

साध संगि माइआ तरै॥ (पृ २१३)

साध कै संगि नही कछु घाल॥

दरसनु भेटत होत निहाल॥ (पृ २७२)

गई गिलानि साध कै संगि ॥

मनु तनु रातो हरि कै रंगि ॥ (पृ ८९२)

संतसंगति महि होइ उधार ॥

नानक भवजलु उतरसि पारि ॥ (पृ ९०१)

साधसंगति निहचउ है तरणा ॥ (पृ १०७१)

मिलि साधू सुखु ऊपजै. लथी सभ छाई ॥ (पृ ११९३)

जे लोइहि सदा सुखु भाई ॥

साधू संगति गुरहि बताई॥ (पृ ११८२)

साधू संगति लगिआ तरिआ संसार॥ (पृ १२५१)

**सतसंगति सतिगुर चटसाल है जितु हरि गुण सिखा॥ (पृ. १३१६)**

पहले बताया जा चुका है — ईश्वर से अश्रद्धक — विमुख मनुष्यों के मन **निर्बल तथा अस्थिर** होते हैं — क्योंकि उनकी सुरति-वृत्ति भ्रम मयी झूठी माया में गलतान होती है तथा श्रद्धा भावना की 'जड़ें' ईश्वर की आत्मिक धरती से **उखड़ी हुई** होती हैं।

दूसरी ओर गुरमुख प्यारे बरखे हुए महापुरुषों की श्रद्धा भावना की सूक्ष्म 'जड़ें' आत्मिक मंडल की धरती में **गहरी धंसी होती हैं**, जिस कारण उन के मन को **इन दैवीय जड़ों द्वारा आत्मिक शक्ति की रें मिलती रहती है** तथा इनका मन 'बलवान' होता है।

ऐसे आत्म परायण हुए बलवान मन का **असर या प्रभाव**, माया परायण हुए निर्बल मन पर पड़ना स्वाभाविक तथा अनिवार्य है।

गुरबाणी इस बात की यँ पृष्टि करती है —

**गुरमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावै एक कणी॥ (पृ ६०८)**

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता॥

**मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता॥ (पृ ८०९)**

धनु धनु साध जिनि हरि प्रभु जानिआ

**मिलि साधू पतित उधरिआ॥**

मनूआ चलै चलै बहु बहु बिधि

**मिलि साधू वसगति करिआ॥ (पृ १२९४)**

जब ऐसे आत्म जीवन वाले बरखे हुए गुरमुख प्यारे 'साध संगति' 'संत मंडली' में एकत्रित होते हैं, तब **संगति की सम्पूर्ण आत्मिक शक्ति बहुत बढ़ कर दामनिक (dynamic) हो जाती है।** ऐसी सच्ची-पवित्र शक्तिशाली, **आत्मिक जीवन वाली 'संगति' को 'साध संगति' अथवा 'संत-संगत' कहा जा सकता है**, जिस का निर्बल श्रद्धाहीन मनो पर दामनिक 'आत्म-रंग' चढ़ना अनिवार्य है। इस 'आत्मिक रंग' का प्रभाव अभिलाषी जिज्ञासुओं की मायिकी रंगत पर निर्भर है। यदि 'मायिकी रंग' अति गहरा हो, तब 'आत्म रंग' का प्रभाव कम तथा धीरे-धीरे होता है। यदि 'मायिकी रंग' हल्का हो, तब आत्म रंग गहरा तथा शीघ्र चढ़ता है। दूसरी ओर तीव्र आत्मिक भूव वाले जिज्ञासु का जीवन

**‘आत्मिक छुह’ लगते ही उलट कर, पलट कर मनमुख से गुरमुख बन जाता है।**

इसी कारण गुरबाणी में यह दावा किया है —

**साध कै संगि नही कछु घाला॥** (पृ २७२)

**साधसंगति निहचउ है तरणा॥** (पृ १०७१)

अन ते टूटीऐ रिख ते छूटीऐ॥

**मन हरि रस घूटीऐ संगि साधू उलटीऐ॥** (पृ ८३०)

हाँ जी, यदि ‘संगति’ करते हुए —

मन इकटठा नहीं होता,

बदलता नहीं,

अन्तर – आत्मा की ओर आकर्षित नहीं होता,

मैं – मेरी से ऊपर नहीं उठता,

मायिकी भवजल में से नहीं निकलता,

आत्म परायण नहीं होता,

प्रेम से नहीं भरता,

आत्म रंग नहीं चढ़ता,

आत्म रस नहीं आता,

प्रेम स्वैपना में मस्त नहीं होता,

‘तू ही’ ‘तू ही’ में खो नहीं जाता,

**तब, यह ‘आत्म रौं’ से कोरे, नाम से टूटे विमुख – मनमुखों का समूह ही कहा जा सकता है, — जिस में से —**

माया की बदबू आती है,

अहम् डींगें मारता है।

मैं – मेरी का बोल बाला है

स्वार्थ का व्यवहार है

चौधरपुने की भ्रूव है

लालच के कुत्ते भौंकते हैं

क्रोध की लपटें उठती हैं  
 शिकवे – शिकायतें परिपूर्ण हैं  
 वाद – विवाद होते हैं  
 वैर – विरोध बढ़ता है  
 लड़ाई झगड़े हैं  
 रूकन खराबे हैं

ऐसे मनमूर्खों का मेल, 'मायिकी समूह' या 'कुसंगति' ही कहलवा सकता है।

परन्तु हम अपनी अज्ञानता में 'कुसंगति' को ही 'सतसंगति' या 'साध संगति' समझ कर, इस में मन को झूठी तसल्ली दिए बैठे हैं तथा अपने जीवन को गलत दिशा दे रहे हैं।

क्योंकि यहाँ 'सत्' अथवा 'सची' आत्मिक भावना की जगह, अहम् के प्रभाव अधीन मैं-मेरी, स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वैत, वैर – विरोध का ही बोल बाला है तथा इसे 'सत संगति' अथवा 'साध संगति' कहना, इन शब्दों का निरादर करना है।

ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ मन तिन कै निकटि न भिटीऐ॥

(पृ १७०)

दूजे भाइ दुसटा का वासा॥

भउदे फिरहि बहु मोह पिआसा॥

कुसंगति बहहि सदा दुखु पावहि दुखो दुखु कमाइआ ॥ (पृ. १०६८)

जिन अंदरि निंदा दुसटु है नक वढे नक वढाइआ॥.....

हरि जीउ तिन की संगति मत करहु रखि लेहु हरि राइआ॥

(पृ १२४४)

सची बैसक तिन्हा संगि जिन संगि जपीऐ नाउ॥

तिन्हा संगि संगु न कीचई नानक जिना आपणा सुआउ ॥

(पृ ५२०)

(क्रमशः.....)